International Journal in Management and Social Science
Volume 11 Issue 02, February 2023 ISSN: 2321-1784 Impact Factor: 7.088
Journal Homepage: http://ijmr.net.in, Email: irjmss@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal

बौद्ध दर्शन : नैतिकता, ध्यान और धर्म का अंतर संबंध

(डा.ज़रफिशां ज़ैदी,सहायक-आचार्य,दर्शन शास्त्र, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय अजमेर)

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में बौद्ध दर्शन के संदर्भ में नैतिकता, ध्यान और धर्म के अंतर संबंध पर विचार करते हुए, इस विषय को प्रस्तुत किया गया है कि धर्म का गहरा संबंध ध्यान से है। एक ध्यानी ही सच्चा धार्मिक हो सकता है। बिना ध्यान के धर्म रस्मो रिवाजों और कर्मकांड के सिवाय कुछ भी नहीं है। वर्तमान समय में जहां धर्म का अर्थ रिलिजन लिया जाता है वही प्राचीन भारत में महात्मा बुद्ध के समय धर्म का अर्थ ऋत, प्रकृति का अटल कानून या स्थाई नियम हुआ करता था।[1] जिस प्रकार समस्त प्रकृति प्राकृतिक नियमों के अधीन है ठीक वैसे ही आंतरिक जगत भी कुछ सार्वभौमिक नियमों से आबद्ध है, यदि अन्तर्मन में शांति चाहिए तो इन नियमों के अनुरूप जीवन जीना होगा। उन नियमों को जानना और उनके अनुसार जीवन जीना धर्म है। इन नियमों को आत्मसात करने के लिए ध्यान आवश्यक है और ध्यान के लिए शीलवान होना, नैतिक सिद्धान्तों का पालन करना आवश्यक है तो फिर ध्यान क्या अर्थ है और शीलवान कैसे हो सकते हैं, ये प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाते हैं जिन पर ई शोध पत्र में विचार किया गया है -

...

ऐसा कहां जाता है कि महात्मा बुद्ध ने संबोधि प्राप्त करने के पश्चात लगभग 35 वर्षों तक उपदेश दिए। उनके समस्त प्रवचनों को त्रिपिटकों[2] में संग्रहित किया गया। इन बौद्ध ग्रन्थों का आकार जानकर आश्चर्य होता है कि महात्मा बुद्ध बुद्धत्व की घटना घटित होने के पश्चात कितना अधिक बोले हैं। शायद ही कोई दूसरा बुद्ध,पैगंबर या संत महात्मा बुद्ध जितना बोला हो। इस विशाल बुद्ध वाणी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं केंद्रीय विषय है- दुख। बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात महात्मा बुद्ध ने प्रथम प्रवचन धर्म चक्र प्रवर्तन दिया। इस प्रवचन में उन्होंने चार आर्य सत्यों के बारे में बताया। यह चार आर्य सत्य हैं- दुख दुख समुदय, दुख निरोध और दुख निरोध मार्ग।[3] इस प्रवचन में उन्होंने दुख और उसको दूर करने के उपाय पर अपना अनुभव साझा किया है। हम जानते है कि महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं का उद्देश्य सांसारिक या पारलौकिक सफलता नहीं थ बल्कि मानव जाति को दुखों से मुक्त करना था । दुख सार्वभौमिक है। हम सब ने अपने जीवन में कभी ना कभी दुख का सामना किया है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि बुद्ध अस्तित्वगत दुःख की बात कर रहे हैं और यह अस्तित्वगत दुख भौतिक कष्टों और सामान्य चिंताओं से अलग है। जन्म लेना और मृत्यु को प्राप्त हो जाना, इन दोनों ही छोरो के बीच में बीमारी, बुढ़ापा, प्रिय से वियोग,

अप्रिय से संयोग आदि ऐसे दुख हैं जो मानव जीवन के साथ जुड़े हुए हैं और हम सबके अनुभव का हिस्सा है।[4] सवाल यह है कि इन दुखों से हम कैसे पार पा सकते हैं। बुद्ध ने उसका उपाय बताया और वह उपाय है- शील, समाधि, प्रज्ञा।[5] इसे त्रिशिक्षा साधना कहा जाता है। बौद्ध धर्म में इन तीन शब्दों का महत्वपूर्ण स्थान है। आगे हम इन तीनों शब्दों के अर्थ और उनके संबंध पर विचार करेंगे। यह तीनों शब्द एक ही मार्ग के तीन अलग-अलग पड़ाव है । भाषा की सीमा है इसलिए इनको तीन अलग शब्दों से जाना जाता है वरना ये तीनों एक ही धारा के हिस्से है। मानव जीवन में दुख का अनुभव सर्वव्यापी है। हमारे अनुभव में जो दुख और गहन पीड़ा है उसको दूर करने के उपाय क्या है। यह जानना हम सबको वांछनीय लगता है। इसके लिए सर्वप्रथम हमें दुख के स्वभाव को समझना होगा और उसके मूल कारण को जानना होगा क्योंकि अगर दुख अकारण है तो कभी दूर नहीं हो सकता है और अगर उसका कोई कारण है तो हम कारण को नष्ट करके दुख दूर कर सकते हैं। बुद्ध ने कहा दुख सकारण है। इसका मूल कारण हमारा अज्ञान है। मनुष्य जाति अपने अज्ञान से दुख पाती है और इस अज्ञान को दूर करने का एकमात्र उपाय ज्ञान है। अज्ञान अंधकार के समान है। जिस प्रकार अंधकार और प्रकाश का सह अस्तित्व संभव नहीं है वैसे ही अज्ञान और ज्ञान का अस्तित्व भी साथ संभव नहीं है। अज्ञान रूपी अंधकार प्रकाश रुपी प्रज्ञा से समाप्त हो जाता है। अज्ञान या अविद्या क्या है। बौद्ध दर्शन ने कहा जो अनित्य, अस्थाई और परिवर्तन शील है उसे नित्य, स्थाई और अपरिवर्तनीय मानना अज्ञान है। ज्ञान के अभ्युदय से यह अज्ञान समाप्त होगा। यह ध्यातव्य रहे कि ज्ञान का अर्थ मात्र सूचनाएं और उनपर हमारा मानसिक व्यापार नहीं है। यहां उसके लिए सही शब्द प्रज्ञा है। परन्तु प्रज्ञा का अभ्युदय कैसे हो। क्या किया जाए ताकि हम प्रज्ञावान हो सके। प्रज्ञा से मतलब क्या है। इन्हीं सब प्रश्नों पर हम आगे विचार करेंगे। यहां इतना कह देना पर्याप्त है कि प्रज्ञा के लिए ध्यान आवश्यक है और ध्यान के लिए शीलवान होना ज़रूरी है। चलिए अब हम इन शब्दों को समझते हैं-

पाली भाषा में "शील" शब्द का अर्थ है आचरण, सद्गुण या नैतिकता। शील पांच हैं, जिन्हें सम्मिलित रूप से पंचशील कहा जाता है। ये हैं - हत्या नहीं करना, झूठ नहीं बोलना ,चोरी नहीं करना, व्यभिचार नहीं करना और नशा नहीं करना।[6] ये वे नियम हैं जो मनुष्य के लिए करणीय है , जो उसे शीलवान, नैतिक और सभ्य बनाते हैं। बुद्ध ने सीधे तौर पर नैतिक सिद्धांतों की सूची नहीं दी कि यह कर्म उचित है या यह अनुचित है बल्कि उन्होंने मनुष्य के लिए पंचशील के रूप में कुछ सार्वभौमिक सिद्धांत दिए जिनके माध्यम से मनुष्य समाज में सह अस्तित्व की मांगों को पूरा कर सकता है तथा इन नियमों की सहायता से वह अपनी अंतर यात्रा को सुगम बना सकता है। लेकिन हम जानते हैं कि शीलवान बनना इतना आसान नहीं है। सदाचार को जीवन में उतारने के लिए मन को वश में करना आवश्यक है। हम जानते हैं कि हमारा

मन अत्यधिक चंचल और अस्थिर है। इसमें निरंतर विचारों,भावों और अनुभूतियों का प्रवाह चलता रहता है। यह कभी अतीत और कभी भविष्य में भटकता रहता है। ऐसा अस्थिर और कमज़ोर मन प्रज्ञा की रोशनी को संभाल नहीं सकता इसलिए मन की एकाग्रता आवश्यक है। अगर मन एकाग्र नहीं होगा वह किसी विषय पर टिकता ही नहीं तो फिर वह सदाचारी नहीं हो सकता और अगर सदाचारी बनना है तो मन की एकाग्रता आवश्यक है, यह समस्या है। पहले मन एकाग्र हो तो हम सदाचारी बनें और सदाचारी हो तो हमारा मन एकाग्र हो। प्राचीन भारत में इस समस्या के समाधान के लिए बहुत अच्छा उपाय गुरुकुल और तपोभूमि के रूप में खोजा गया था। जहां का वातावरण ही ऐसा होता था की पांचशीलो का पालन करना आसान हो जाता था। गुरुकुल या तपोभूमि में व्यक्ति अधिकांशत एकांत में मौन की साधना करता था। सत्संग और वाणी का संयम आवश्यक हो जाता था। भोग विलास से दूर रहता था इसलिए पंचशीलों का पालन सुगमता से हो पाता था।[7] यह एक महत्वपूर्ण विषय है लेकिन यहां पर इस पर विस्तार से विचार करने की बजाय इतना ही कह सकते हैं कि आधुनिक जीवन प्रणाली में हमें इस मार्ग पर चलने के लिए अपने आसपास का ऐसा वातावरण निर्मित करना होगा और कुछ ऐसे उपाय खोजने होंगे जिससे कि हमारा शील भंग ना हो। शील वान मनुष्य समाधि का अभ्यास करता है जिसके माध्यम से वह अपने चंचल और कमजोर मन को नियंत्रित और शक्तिशाली बनाता है। समाधि शब्द समिधा से बना है जिसका अर्थ है मन की एकाग्रता।[8] मन को एकाग्र करने के लिए बुद्ध ने कुछ सरल सहज,वैज्ञानिक, अनुभाविक तरीके बताएं। इन विधियों के माध्यम से बुद्ध ने स्वयं का मन एकाग्र किया और हजारों लाखों मनुष्यों को मन की एकाग्रता प्राप्त करने में सहायता की। ये विधियां हैं- आना पान सती, सम्मां सती और विपश्यना। ध्यान की इन विधियों के माध्यम से मनुष्य को सत्य का साक्षात्कार उपलब्ध हो पाता है। आनापान सती सांसों से संबंधित अभ्यास है जिसमें मन को एकाग्र करने के लिए सांस आलंबन होती है। आती जाती हुई प्राकृतिक सहज सांस को साक्षी भाव से देखना आना पान है।[9] सांसों की गति का प्रभाव हमारे मनोभावों पर पड़ता है। ऐसा संभव नहीं है कि कोई मनुष्य क्रोध की अग्नि में जल रहा हो और उसकी सांसे बिल्कुल सामान्य हो। ठीक वैसे ही बहुत धीरे सहज सरल सांस लेने वाला मनुष्य किसी विषय पर क्रोधित नहीं हो सकता। क्रोध के लिए, घृणा के लिए उसको अपनी सांसों की रफ्तार बदलना ही होगी, बदल ही जाएगी। जब आती जाती हुई सांसों को तटस्थ भाव से , साक्षी भाव से देखते हैं तो सांसे गहरी और धीमी हो जाती हैं और मन शांत व एकाग्र होने लगता है। सम्मा सती का मतलब है- जागरूकता। मन अतीत या भविष्य की किन्हीं घटनाओं में उलझा रहता है। शरीर और मन भिन्न-भिन्न दिशाओं में होते हैं। सम्मा सती का मतलब है हम जो भी काम करें, पूरी जागरूकता के साथ करें यानी कि शरीर और मन दोनों एक जगह पर उपस्थित हूं। एक साथ उपस्थित हो। चलते, खाना खाते, बैठते, पढ़ते हुए हमें यह बोध रहे कि हम

चल रहे हैं, खा रहे हैं, बैठ रहे हैं,पढ़ रहे हैं। इस से मन एकाग्र होता है। शांत होता है। वह अतीत और भविष्य की घटनाओं पर मूल्यांकन करने की बजाय वर्तमान में स्थिर होना सीखता है। विपश्यना बुद्ध के द्वारा खोजी गई एक महान विधि है जिसमें शरीर पर होने वाली संवेदनाओ के माध्यम से मन को एक आग्रह किया जाता है।[10]उसे निर्मल किया जाता है। शरीर और मन दो अलग-अलग नहीं है बल्कि शरीर का प्रभाव मन पर पड़ता है और मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। यह एक ही स्थिति के दो रूप हैं जो गहराई में संबंधित है। मन के भावों और विचारों का असर शरीर पर संवेदनाओं के रूप में होता है। संवेदनाओं को साक्षी भाव से देखने पर हम अपने मन को एकाग्रचित करने के साथ-साथ उसमें उठने वाली को प्रवृत्तियों का जड़ से नष्ट भी करते हैं क्योंकि जब हम अपनी संवेदनाओं को साक्षी भाव से देखते हैं बिना मूल्यांकन किए उनका अवलोकन करते हैं तो हम हर समय मूल्यांकन करने वाले मन का स्वभाव बदलने का काम करते हैं। हमारा राग और द्वेष जगाने वाला स्वभाव परिवर्तित होने लगता है और धीरे-धीरे स्वभाव निर्मल होने लगता है। मन राग और द्वेष दिशा और मुंह के बंधनों से मुक्त होने लगता है।

इन तीनों विधियों के माध्यम से मन शांत, स्थिर और निर्मल हो जाता है जिसमें प्रज्ञा का अभ्युदय होता है। वह सत्य को सीधा-सीधा देख पाने में सक्षम हो पाता है। तब वह देख पाता है। जो अनित्य, नश्वर, परिवर्तनशील है उस को अनित्य, नश्वर और परिवर्तनशील जान पाता है। यथाभूत। जो जैसा है, वैसा है। यही प्रज्ञा है और इस प्रज्ञा के उदय से दुखों से निवृत्ति होती है। पाली शब्द पन्ना का अर्थ है सत्य का साक्षात्कार। यथार्थ की अनुभूति। जब सही-सही सारी की सारी श सच्चाई सामने होती है। अनित्य में नित्यता, अनात्म में आत्म, परिवर्तन में स्थाई देखने वाला भ्रमित मानव मन जब अनित्य, अनात्म, परिवर्तन की सच्चाई का साक्षात करता है। यही साक्षात्कार प्रज्ञा है। सब्बे संखारा अनिच्चाति यदा पच्चाय पस्सति।

अथ निब्बिन्दति दुक्के एस मग्गो विसुद्दिया।।12

अर्थात जब मनुष्य प्रज्ञा द्वारा देखता है तो सब संस्कार अनित्य प्रतीत होते हैं।तब वह क्लेशों से विरक्त होता है और संसार में उसकी आसक्ति नहीं रहती। यह विशुध्दि का मार्ग है।

अब उसे कोई भ्रमित नहीं कर सकता। अब वह अविद्या से बाहर आ चुका है। इसी सत्य का साक्षात्कार दुख निवृत्ति है।

संदर्भ:

1. विपश्यना क्यों और कैसे- आचार्य श्री सत्यनारायण गोयनका विपश्यना साधना संस्थान,नई दिल्ली , पृष्ठ संख्या- 4
2. भारतीय दर्शन की रूपरेखा- ए. हिरियनना, पृष्ठ संख्या- 136
3. बौद्धधर्म दर्शन - आचार्य नरेंद्र देव,मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली,भूमिका
4. व्हाट द बुद्धा टाट- वाला पॉला राहुला, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 20
5. बौद्धधर्म दर्शन- आचार्य नरेंद्र देव, मोतीलाल बनारसी दास,नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 18
6. बौद्धधर्म दर्शन- आचार्य नरेंद्र देव, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 19
7. विपासना क्यों और कैसे आचार्य श्री सत्यनारायण गोयनका विपश्यना साधना संस्थान नई दिल्ली पृष्ठ संख्या- 7
8. बौद्धधर्म दर्शन- आचार्य नरेंद्र देव ,मोतीलाल बनारसी दास,नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 41
9. महासतीपट्ठान सुत्त, आनापानपब्ब निट्ठितं
10. विपश्यना क्यों और कैसे आचार्य सत्यनारायण गोयनका विपश्यना साधना संस्थान पृष्ठ संख्या 13
11. बौद्धधर्म दर्शन- आचार्य नरेंद्र देव,मोतीलाल बनारसी दास,नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 20
12. धम्मपद, 2/5